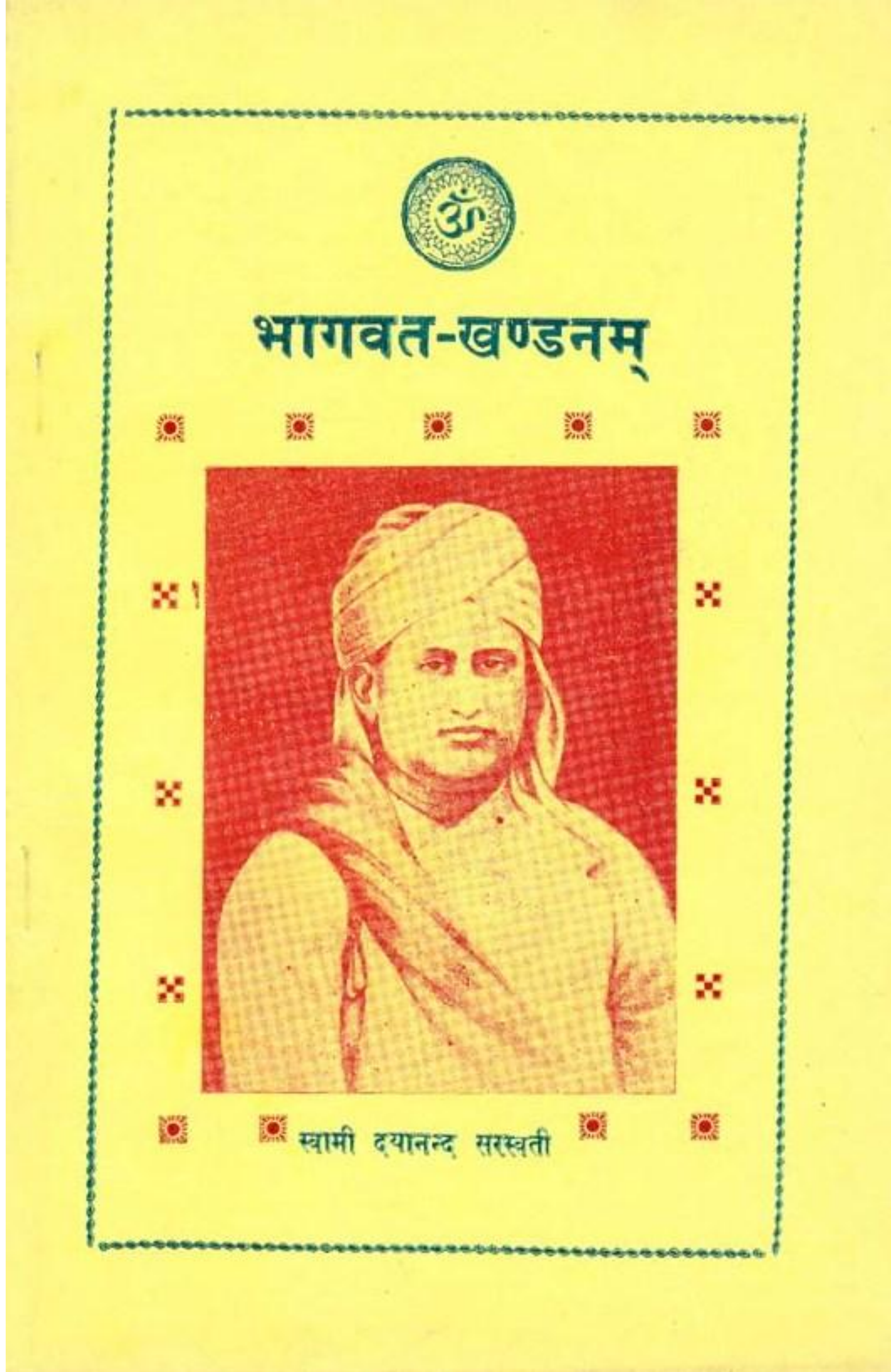

ओ३म्
भागवत-खण्डनम्
स्वामी दयानन्द सरस्वती

॥ ओ३म् ॥

भागवत-खण्डनम्

श्रीमद्भागवतं पुराणं नाम किमस्ति ? कुतः सन्देहः ? द्वे भागवते श्रूयेते— एकं देवीभागवतं द्वितीयं कृष्णभागवतं चेति । अतो जायते सन्देहः, अनयोः किमस्ति व्यासकृतमिति ? देवीभागवतं श्रीमद्भागवतमस्ति व्यास-कृतं च, नान्यत् । कुत एतत् ? शुद्धत्वाद् वेदादिभ्योऽविरुद्धत्वाच्च । अत एव देवीभागवतस्य श्रीमद्भागवतसंज्ञा, नान्यस्य च भागवतस्य । कुत एतत् ? अशुद्धत्वात् प्रमत्तगीतत्वाच्च ।

किञ्च तत्—

"जन्माद्यस्य यतोऽन्वयाद् इतरश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्" ।[1]
इत्यादिनिर्मितं यत् । कुत एतदशुद्धम् ? वेदादिभ्यो विरोधात् । कोऽस्ति विरोधः ? सर्वमेव विरुद्धम् । कथम् ?

भाषार्थः

श्रीमद्भागवत नाम का पुराण कौन-सा है ? यह सन्देह क्यों हुआ ? दो भागवत नाम के पुराण सुनाई देते हैं (उपलब्ध होते हैं)—एक देवी-भागवत और दूसरा कृष्णभागवत । इसलिए सन्देह होता है कि इनमें कौन-सा व्यासकृत है[2] ? देवीभागवत ही श्रीमद्भागवत है, और वही व्यासकृत है, अन्य नहीं । यह क्यों ? शुद्ध होने से और वेदादि से अविरुद्ध होने से । इसीलिए देवीभागवत की ही श्रीमद्भागवत संज्ञा है, अन्य भागवत की नहीं । वह क्यों ? अशुद्ध होने से, और प्रमत्तगीत (=प्रमादी पुरुष का कहा) होने से ।

वह (=अशुद्ध और प्रमत्तगीत) क्या है ? **जन्माद्यस्य०**—इत्यादि निर्मित जो [कुछ है, वह सभी अशुद्ध] है । यह अशुद्ध क्यों है ? वेदादि से विरोध होने के कारण । कौन-सा विरोध है ? सब कुछ ही विरुद्ध है ।

---

१. भागवत स्कन्ध १, अध्याय १, श्लोक १ । अग्रे सर्वत्र संख्यानिर्देश एव करिष्यते । तत्र यथाक्रमं स्कन्धाध्यायश्लोकसंख्या विज्ञेया ।

२. पुराणों की संख्या अठारह मानी जाती है दोनों भागवतों की गणना करने

"न नानार्थं न भिन्नार्थं नासंहृतं न चाधिकम् ।
न न्यूनं कष्टशब्दं च व्युत्क्रमाभिहितं न च ॥
नासत्यमतिसत्यं वा सूक्ष्मं सत्यप्रयोजनम् ।
एतद् दशदोषरहितं वाक्यमुच्चार्यं लेखनीयं च" ॥[1]

इत्युक्तं मार्कण्डेयपुराणे[2]। एतद्दोषवदस्ति प्रमत्तगीतं भागवतम्, अतोऽकथनीयमश्रवणीयं च ।

कथं तर्हि शुक उक्तवान् इदं भागवतं परीक्षितं प्रति[3] इति ? नोक्त-

---

कैसे ? 'अनेक अर्थों वाला, भिन्न अर्थ वाला, संक्षिप्त, अधिक, न्यून, क्लिष्ट शब्द, उलटे क्रम से कथित, असत्य, अतिसत्य, सूक्ष्म सत्य प्रयोजन वाला, इन दश दोषों से रहित वाक्य ही उच्चारण करना और लिखना चाहिए' ऐसा मार्कण्डेय पुराण में कहा है। इन दोषों से युक्त है, प्रमादी पुरुष का कहा हुआ भागवत। इसलिए यह कथा करने और सुनने योग्य नहीं है।

[यदि इन दोषों से युक्त भागवत है] तो कैसे 'शुक (=व्यासपुत्र) ने इस भागवत को परीक्षित के प्रति कहा' ऐसा कहा जाता है ?

पर १६ पुराण-संख्या हो जाती है। इसलिए गणना में एक ही भागवत का समावेश हो सकता है। चाहे वह देवीभागवत हो, चाहे कृष्ण-भागवत।

१. तुलना कार्या—महाभारत शान्ति० ३२०। ८७-८६—अभिन्नार्थम्, न चाधिकम्, नाश्लक्ष्णम्, न संन्दिग्धम्, न गुर्वक्षरसंयुक्तम् न पराङ्मुखसुखम्, नानृतम्, न त्रिवर्गेण विरुद्धम्, नाप्यसंस्कृतम्, न न्यूनम्, न कष्टशब्दम्, न विक्रमाभिहितम्, न शेषम्, न अनुकल्पेन युक्तम्, न निष्कारणम्, न अहेतुकम् ।

२. अत्र मार्कण्डेयपुराणनाम्नोद्धृतौ दशदोषनिदर्शकौ श्लोकौ मार्कण्डेयपुराणे नोपलब्धावस्माभिः। मार्कण्डेयपुराणे (१।१८)—'मार्कण्डेय······दशाष्टदोषरहितो वक्तुम्, निर्देश उपलभ्यते। स्कन्दपुराणे कुमारिकाखण्डे पञ्चचत्वारिंशत्तमेऽध्याये (वाङ्गसंस्करणे) 'नवभिर्नवभिश्चैव विमुक्तं वाग्विदूषणैः। नवभिर्बुद्धिदोषैश्च वाक्यं वक्ष्याम्यदोषमत् ॥ इत्युक्त्वा अष्टादशवाक्यदोषा नवबुद्धिदोषाश्च विवृताः। अस्मिन्नेव पुराणे प्रभासखण्डे "दशदोषविवर्जितां कथाम्" इति वाक्यं दृश्यते, परन्तु दशवाक्यदोषास्तत्र नोपसंख्यायन्ते।

३. द्र० भागवत १।३।४१-४२; तथा भागवत-माहात्म्य अ० १, श्लोक ११-१३ ॥

वान् । कुतो नोक्तवान् ? शुकस्तु युद्धात् पुरा मोक्षं प्राप्तवान् इति महाभारते शान्तिपर्वणि लिखितम्[1] । अतोऽशुद्धमेव—'शुकः परीक्षितं प्रयुक्तवान्' इति । तर्हि छायाशुकेन प्रोक्तमिति ? स तु गृहस्थो न नग्नः[2] । व्यासप्रोक्तमस्ति न वा[3], नैवाम्बरीषशुकप्रोक्तम्[4] ।

"नित्यं भागवतं शृणु हयग्रीव शुकप्रोक्तम्" ।[5]

'नित्यं भागवतं श्रृणु' इति सर्वं[6] कथनमशुद्धमेव ।

[शुक ने परीक्षित के लिए] नहीं कहा । क्यों नहीं कहा ? शुक तो [भारत] युद्ध से पूर्व ही मोक्ष को प्राप्त हो गया था, ऐसा महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है । इसलिए अशुद्ध ही है कि—'शुक ने परीक्षित के लिए [भागवत] कहा' । तो छायाशुक ने कहा [होगा] ? वह तो गृहस्थ था, संन्यासी नहीं । व्यास प्रोक्त है नहीं, न ही अम्बरीषशुक का कहा है ।

नित्यं भागवतं श्रृणु०—इत्यादि श्लोक में 'नित्य भागवत को सुनो' कहना सारा ही अशुद्ध है[7] ।

---

१. अध्याय ३३३ ॥ शान्तिपर्वणि शुकस्य मोक्षप्राप्तिकथा निरुक्ता । शान्तिपर्वस्था सर्वा एव कथा भारतयुद्धानन्तरं युधिष्ठिरं प्रत्युक्ताः । अतो भारतयुद्धात् प्रागेव शुको मोक्षं प्राप्तवानिति स्पष्टमेव ।

२. संन्यासीत्यर्थः ।

३. अस्थानेऽयं पाठः प्रतिभाति ।

४. भागवतटीकारम्भे श्रीधरेणोक्तम्—'पद्मपुराणे च अम्बरीषं प्रति पुराणवचनात्—अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं श्रृणु' इति । मुद्रिते पद्मपुराणे गौतमाम्बरीषसंवादो नोपलभ्यते तत्त्वसन्दर्भे श्रीजीवगोस्वामिनाऽयं श्लोक उद्धृतः ।

५. नोपलब्धमस्माभिः ।

६. दूषितस्य भागवतस्य नित्यं श्रवणं कार्यमित्येकम्, हयग्रीवशुकप्रोक्तं शुकप्रोक्तं वा इत्यपरम् । उभे अपि वचने अशुद्धे इति तात्पर्यम् ।

७. इस श्लोक में 'भागवत को नित्य सुनो' यह लिखना उसके अशुद्ध होने से ठीक नहीं है । और 'हयग्रीव शुक से अथवा शुक से कहा गया' कथन भी इतिहास-विरुद्ध होने से अशुद्ध है । इन दो अशुद्धियों की दृष्टि से 'सर्वम्' (सारा) पद का निर्देश किया है ।

अन्येऽपि दोषाः सन्ति न वा ? सन्ति बहवो दोषाः। एकदोषवतोऽपि ग्रन्थस्य प्रामाण्यं न भवति, कुतो बहुदोषवतश्च। तस्मात् स्थालीपुलाकन्यायवत् [1]प्रमादस्तावद् द्रष्टव्यः—

"ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया" ॥[2]

परमं गुह्यं यदस्ति ज्ञानं तद्विज्ञानमेव भवति, पुनर्विज्ञानसमन्वितमितीदं [विशेषणं] व्यर्थमेव। एवं च [3]चतुश्श्लोक्यशुद्धाऽस्ति।

"जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादि॰"[4]

यतः कुत इति प्रष्टव्यः ? कर्मणो वा कालाद्, आहोस्विद् ईश्वराद् वा कामाद् आहोस्वित्प्रकृतेर्वा ब्रह्मणः। किञ्चिदपि पूर्वं प्रकृतं न दृश्यते। अत एव सर्वमशुद्धं कथनम्।

अन्य भी दोष हैं वा नहीं ? बहुत से दोष हैं। एक दोष से युक्त ग्रन्थ का भी प्रामाण्य नहीं होता, बहुत दोष वाले का कहां से होगा ? इसलिए स्थालीपुलाक न्याय से [कतिपय] प्रमाद देखने योग्य हैं—

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्॰—यहां जो परम गुह्य ज्ञान होता है, वह विज्ञान ही होता है। अतः पुनः 'विज्ञानसमन्वितम्' (=विज्ञान से युक्त) यह कथन व्यर्थ है। इसी प्रकार चतुःश्लोकी (=चारों श्लोक) अशुद्ध हैं।

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात्॰—यहां 'यतः' (=जिससे) पद का अभिप्राय प्रष्टव्य है—कर्म से अथवा काल से, अथवा ईश्वर से वा काम से, अथवा प्रकृति से वा ब्रह्मा से ? इस से पूर्व कुछ भी प्रकृत (प्रकरण निर्दिष्ट) नहीं है। इसलिए यह सब कथन अशुद्ध है।[5]

---

१. 'प्रसादः' इति पूर्वमुद्रितोऽपपाठः।

२. भाग॰ २।९।३०॥ ३. भाग॰ २।९।३१-३४॥

४. भाग॰ १।१।१॥

५. सर्वनाम-संज्ञक पद का निर्देश पूर्व-निर्दिष्ट पद के स्थान पर ही होता है। यहां इस श्लोक से पूर्व कुछ भी प्रकृत नहीं है। अतः 'यतः' सर्वनामपद का प्रयोग अशुद्ध है।

"भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव" ।[1]

वसिस्सम्प्रसारणी **इति महाभाष्यम्**[2] । संवत्सरोषितो भिक्षुः[3]; प्राप्य पुण्य-कृतांल्लोकान् उषित्वा शाश्वतीः समाः[4] **इत्युदाहरणाद् 'विप्रवसित' इत्यशुद्धमेव ।**

"कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः" ।[5]

प्रथने वावशब्दे[6] [इति] **शब्दोपाधौ विस्तरः, अन्यत्र विस्तार एव । कोऽस्ति शब्दोपाधिः ? कथनश्रवणे ।** विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन, भूयः कथय०[7]; विभूतेर्विस्तरो मया[8]; नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे[9]; दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु[10]; निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद् गदतो मम[11] । **एवं सति** 'कथितो वंशविस्तारो भवता' **इत्यशुद्धमेव ।**

भिक्षुभिर्विप्रवसिते०—'वस' [निवासे] धातु सम्प्रसारण कार्य वाली है, ऐसा महाभाष्य में कहा है । **संवत्सरोषितः०; प्राप्य……उषित्वा०** आदि उदाहरणों [में 'उषित' पद का प्रयोग होने] से 'विप्रवसितः' पद अशुद्ध ही है ['विप्रोषितः' प्रयोग होना चाहिये] ।

कथितो वंशविस्तारो—प्रथने वावशब्दे इस [पाणिनीय नियम से] शब्द अभिधेय होने पर **"विस्तर"**, और अन्यत्र **"विस्तार"** [शब्द ही साधु होता है] । यहां कौनसी शब्दोपाधि है ? कथन और श्रवण [यहां सोम-सूर्यवंश का कथन और श्रवण इष्ट है, अतः विस्तार शब्द का प्रयोग अशुद्ध है] । **विस्तरेणात्मनो०; विभूतेर्विस्तरो मया; नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे; दैवो विस्तरशः प्रोक्त०; निशामय तदुत्पत्तिं विस्तराद्०** [आदि गीता के श्लोकों में **"विस्तर"** शब्द ही प्रयुक्त हुआ है, इसलिए] ऐसा प्रयोग होने से **'कथितो वंशविस्तारो०'** [में **"विस्तार"** शब्द का प्रयोग] अशुद्ध ही है

---

१. भाग० १।६।५।। ममेति पाठः ।।
२. 'वसिः प्रसारिणी' इति महाभाष्ये (७।२।१०) पाठः ।
३. अनुपलब्धमूलम् ।
४. गीता ६।४१।।
५. भाग० १०।१।१।।
६. अष्टा० ३।३।३३।।
७. गीता १०।१८।।
८. गीता १०।४०।।
९. गीता १०।१९।।
१०. गीता १६।६।।
११. अनुपलब्धमूलमिदम् ।

"निगमकल्पतरोर्गलितम्"[१] इत्यादि।

अत्र वेदनिन्दा कृता हि। पतितम्, इति वक्तव्ये 'गलितम्' इत्यशुद्धम्[२]। एका षष्ठी, द्वे पञ्चम्यौ वाऽत्राशुद्धमेव[३]। 'शृणुत' इति वक्तव्ये 'पिबत' इत्यप्यशुद्धमेव।[४]

"नेमं विरञ्चिनं भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप मुक्तिदात्" ॥[५]

निगमकल्पतरो॰—इस श्लोक में वेद की निन्दा की है[६]। **पतितम्** (=गिरा हुआ) ऐसा कहने के स्थान में **गलितम्** (=गला हुआ) कहना अशुद्ध है[७]। एक षष्ठी [=**निगमकल्पतरोः**' में] अथवा दो पञ्चमी [=**निगमकल्पतरोः शुकमुखात्**] का प्रयोग अशुद्ध है[८]। **'शृणुत'** (=सुनो) ऐसा कहने के स्थान में **'पिबत'** (=पीओ) का प्रयोग भी अशुद्ध है[९]।

---

१. भाग॰ १।१।३॥

२. तरोः फलं पतति, न तु गलति। अतः 'पतितं फलम्' इत्येव वाच्यम्।

३. एका षष्ठी—निगमकल्पतरोः। द्वे पञ्चम्यौ वा, एका—(पक्षान्तरे) निगमकल्पतरोः, द्वितीया—शुकमुखात्। षष्ठीपञ्चम्योरुभयोर्वा पञ्चम्योः परस्पर-मन्वयाभावाद् अशुद्धत्वं ज्ञेयम्।

४: अस्मिन्नेव श्लोके (भाग॰ १।१।३) उत्तरार्धे 'पिबत' इत्यस्य स्थाने 'शृणुत' इति वक्तव्यम्, भागवतग्रन्थस्य शब्दात्मकत्वात्। नहि शब्दात्मकं केनचित् पातुं शक्यते।

५. भाग॰ १०।९।२०॥ भागवते 'नेमं विरञ्चो न भवो' इति पाठः।

६. इस श्लोक में भागवत को वेदरूपी वृक्ष का फल=सार कहा है। अर्थात् वेद से भागवत की श्रेष्ठता कही है।

७. फल के वृक्ष से पृथक् होने में 'गिरना' क्रिया का प्रयोग होता है। अतः 'गलना' क्रिया का प्रयोग करना अनुचित है।

८. 'निगमकल्पतरोः' में षष्ठी, तथा, शुकमुखात्' में पञ्चमी का परस्पर कोई अन्वय नहीं होता। यदि 'निगमकल्पतरोः' में पञ्चमी मानें, तब भी दोनों पञ्च-मियों का परस्पर अन्वय नहीं बनता।

९. भागवत ग्रन्थ शब्दरूप है। अतः उसके लिए 'सुनो' क्रिया का ही प्रयोग होना चाहिये, न कि 'पीओ' क्रिया का। क्योंकि वह जलवत् द्रव द्रव्य नहीं है।

अत्रैको नकारो सार्थकः, द्वावनर्थकौ स्तः। निन्दा च कृता ब्रह्मादीनां देवक्यादीनां च।

विप्राद् द्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्।[1]

अत्र ब्राह्मणनिन्दा कृता। 'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धय'[2] अस्माद् विरुद्धत्वाद् अशुद्धोऽपि[3]।

"क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।"[4]

अत्र वेदविहितकर्मकर्तृणां निन्दा कृता[5], अर्थाद् वेदानामपि। नास्तिको

नेमं विरञ्चिर्न०—इसमें एक नकार सार्थक है, और दो अनर्थक हैं।[6] तथा इस में ब्रह्मादि देवों और देवकी आदि की निन्दा की है।

विप्राद् द्विषड्गुणयुताद्०—इस में ब्राह्मणों की निन्दा की है।[7] तथा 'मूर्ख लोग मुझ अव्यक्त को व्यक्त (=प्रकट) हुआ मानते हैं,' इस [गीता के वचन से] विरुद्ध[8] होने से अशुद्ध भी है।

क उत्तमश्लोक०— इस श्लोक में वेदविहित कर्मों के करने वालों को

१. भाग० ७।९।१०॥ २. गीता ७।२४॥

३. गीतायां परब्रह्मणः शरीरग्रहणप्रतिषेध उक्तः। भागवतस्योक्तश्लोके नाभि-पादाद्यङ्गनिर्देशः कृतः। ४. भाग १०।१।४॥

५. 'पशुघ्न' शब्दो याज्ञिकानां वाचकः, यथा 'गोघ्न' शब्दोऽतिथीनाम्। यथा गोघ्नपदे गवां हिंसा नाभिप्रेता, अपितु तत्प्राप्तिरेवाभिप्रेता। यद्वा—तद्धित-प्रयोगाभावेऽपि गोपदेन गोविकाराणां प्राप्तिरुच्यते। आगतायातिथये मधुपर्क उपाह्रियते, मधुपर्कं च गव्यमेव भवति। एवमेव पशुघ्नशब्देनापि पशुप्राप्तिरेवोच्यते। नहि गवादिपशवभावे किमपि यज्ञकर्म कर्तुं शक्यते, तत्र घृतदुग्धदधीनां प्रयोगविधानात्। अतः पशुघ्नानां याज्ञिकानां निन्दाविधानाद् अर्थापत्त्या वेदनिन्दाऽपि क्रियते।

६. इस श्लोक में निषेधार्थक तीन 'न' हैं। एक 'न' से ही निषेध अर्थ की प्रतीति हो जाने से अगले दो 'न' पदों का प्रयोग चिन्त्य है।

७. इस श्लोक में 'कमलनाभ (विष्णु) के पैर रूपी कमलों से विमुख अनेक गुणों वाले विप्र से चाण्डाल को श्रेष्ठ' कहा है। इस प्रकार अर्थापत्ति से ब्राह्मणों की निन्दा की है। ?

८. परमात्मा के अव्यक्त-स्वरूप होने से उसके पैर आदि की कल्पना नहीं हो सकती।

वेदनिन्दकः[1] इत्युक्तं मनुना । अत एवायं भागवतस्यास्य कर्त्ता नास्तिकः ।

"यद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि" ।[2]

असम्बद्धोऽयं श्लोकः ।[3]

व्यासनारदसंवादे[4] व्यासस्यापि निन्दा कृता—व्यासः शोकातुरो-

निन्दा की है।[5] अर्थापत्ति से वेद की भी निन्दा है। 'वेदनिन्दक नास्तिक होता है', यह मनु ने कहा है। इसलिए यह इस भागवत का कर्ता नास्तिक है।

यद्वाग्विसर्गो०—यह श्लोक असम्बद्ध है।[6]

व्यास और नारद के संवाद में व्यास की भी निन्दा की है कि—

१. मनु० २।११॥

२. भाग० १।५।११॥ तत्र प्रथमचरणे 'तद् वाग्विसर्गो' इति पाठः ।

३. उत्तरार्धे—'नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति इत्युच्यते, पूर्वार्धे च 'वाग्विसर्गः' उच्यते । वाग्विसर्गे श्रवणक्रिया न कथमपि सम्भवति' श्रवणक्रियायां च वाग्विसर्गो न भवितुं शक्नोतीत्यसंबद्धताऽत्र ज्ञेया ।

४. द्र० भाग० १।४,५ अ० ।

५. उक्त श्लोक में कहा है कि – 'परम यशस्वी [कृष्ण] के गुणानुवाद से पशुघ्न (=याज्ञिक=यज्ञ करने वाले) के अतिरिक्त और कौन विमुख हो सकता है ? 'पशुघ्न' शब्द का मूल अर्थ 'याज्ञिक' है, जैसे 'गोघ्न' का 'अतिथि'। यथा 'गोघ्न' में गाय की हिंसा अभिप्रेत नहीं है, अपितु उसकी प्राप्ति अभिप्रेत है (घर आए श्रेष्ठ अतिथि को गोदान का विधान है) । अथवा— गो शब्द से गौ से निष्पन्न दूध दही आदि पदार्थ अभिप्रेत होते हैं, क्योंकि अतिथि को मधुपर्क देने का वैदिक विधान है। मधुपर्क गौ के दही आदि से ही बनता है। उसी प्रकार याज्ञिक को भी 'पशुघ्न' इसलिए कहा जाता है, कि वह अपने घर पशुओं का पालन करता है, और उनके घी, दूध, दही से यज्ञ करता है। बिना घी-दूध के यज्ञ सम्भव ही नहीं । अतः पशुघ्न=याज्ञिक की निन्दा करने से अर्थापत्ति से वेद की भी निन्दा की है।

६. इस श्लोक के उत्तरार्ध से 'यशःसमन्वित नामों के श्रवण करने' का विधान है। और पूर्वार्ध में 'वाणी का विसर्ग' अर्थात् अव्यापार कहा है। वाणी का अव्यापार होने पर श्रवण क्रिया नहीं हो सकती, और श्रवणक्रिया होने पर वाणी का व्यापाराभाव नहीं माना जा सकता। अतः यह श्लोक असम्बद्ध है।

ऽभूत्[1], तत्र नारद आगतः[1], पुनर्नारदेन बोधित[2] इति। **व्यासस्तु नारायणावतार[3]स्तस्य कथं शोकः सम्भवेत् ?**

भस्मासुरकथायां[4] शिवस्यापि निन्दा कृता—'भस्मासुरभयाच्छिवः कैलाशं विहाय वनं गतवान्, पुनर्विष्णुना रक्षितः' इति **कस्मादपि त्रैलोक्ये भयं न भवति शिवस्य। यदि कश्चिद् ब्रूयाद् दत्तवराय भस्मासुराय दण्डं न दत्तवान्, तर्हि रावणाय दत्तवराय शिवेन दण्डः कथं दत्तः ? यस्य क्रोधलेशेन सर्वं पञ्चभूतात्मकं जगद् भस्मीभूतं भवति, तस्य भयं कर्तुं कः समर्थः पुमान् भवेत् ?**

बाणासुरकथायामपि[5] शङ्करस्य निन्दा कृता—'कृष्णेन शङ्करः पराजितः[6]' **इति। कोऽपि शङ्करं पराजेतुं समर्थो नास्ति।**

व्यासजी शोकातुर हो गये थे, वहां नारद मुनि पहुंचे और उन्होंने व्यासजी का शोक दूर किया। व्यासजी नारायण के अवतार [कहे गये हैं[7], तब] उन्हें शोक कैसे हो सकता है ?

भस्मासुर कथा में शिव की भी निन्दा की है कि—**भस्मासुर के भय से शिव कैलाश छोड़ कर वन चले गये, फिर विष्णु ने उनकी रक्षा की।** शिव को किसी से तीनों लोकों में भय नहीं हो सकता। यदि कोई कहे कि भस्मासुर को वर देने के कारण शिव ने दण्ड नहीं दिया, तो वर दिए हुए रावण को शिव ने क्यों दण्ड दिया ? जिस शिव के तनिक क्रोध से सारा पञ्चभूतात्मक जगत् भस्म (=प्रलय को प्राप्त) हो जाता है, उसको भयभीत करने में कौन मनुष्य समर्थ हो सकता है ?

बाणासुर की कथा में भी शङ्कर की निन्दा की है कि—'**कृष्ण ने शङ्कर को हरा दिया।**' कोई भी शङ्कर को पराजित करने में समर्थ नहीं है।

---

१. भाग० १।४।३२॥ २. भाग० १।५, अ० ६॥

३. भाग० १।३।२०—'ततः सप्तदशो जातः सत्यवत्यां पराशरात्' इत्यादि-श्लोके विष्णोः सप्तदशोऽवतारो व्यास इति वर्ण्यते।

४. द्र० भाग० १०।८८ अ०। भस्मासुरस्य वास्तविकं नाम वृकासुर आसीत्, स च शकुनेरसुरस्य पुत्रः। ५. द्र० भाग० १०।६३ अ०॥

६. मोहयित्वा तु गिरीशं जृम्भास्त्रेण जृम्भितम्। भाग० १०।६३।१४॥

७. व्यासजी को नारायण का १७वां अवतार माना है (भा० १।३।२०)।

गृहस्थानामपि निन्दाकृता कपोतगुरुकरणकथायाम्[1]—गृहस्थाश्रमोऽश्रेष्ठ[2] इति ।

यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् ।
तथवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥[3]

श्रेष्ठ एव गृहाश्रमो व्यवहारे । अतोऽश्रेष्ठ इति कथनं यत् तत्प्रमत्त-गीतमेव ।

कृष्णस्यापि निन्दा कृता रासमण्डलचीरलीलाकथायाम्[4]—'परस्त्रीभिर्लीलां कृतवान्[5], नग्नदारा दृष्टवांश्चेति[6]' ।

गृहस्थियों की भी कपोत-गुरुकरण (=कबूतर को गुरु बनाना) कथा में निन्दा की है कि—**'गृहस्थाश्रम बुरा है ।'** किन्तु—

'जैसे छोटी बड़ी नदियां समुद्र में पहुंच कर स्थिर हो जाती हैं, वैसे ही सब आश्रमी (=ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी, संन्यासी) **गृहस्थ में ही आश्रय को प्राप्त होते हैं'** (अर्थात् इन सबके योगक्षेम का आधार गृहाश्रम ही होता है) । [मनु के इस वचन के अनुसार] व्यवहार में गृहाश्रम श्रेष्ठ है, उसे बुरा बताना प्रमादी पुरुष का कथन है ।

कृष्ण की भी रासमण्डल और चीरहरण लीला में निन्दा की है कि—**'पराई स्त्रियों के साथ लीला की, और नङ्गी स्त्रियों को देखा ।'**

---

१. द्र० भाग० १०।७।३३ तथा ५२—७४ ॥

२. द्र०—पुष्णन् कुटुम्बं कृपणः सानुबन्धोऽवसीदति । भाग० १०।७।७३॥

३. मनु० ६।९०॥

४. रासमण्डल कथा—भाग० १०।२९—३३ अ० ॥ चीरलीला=चीरहरण-लीला-भाग० १०।२२ अ० ॥

५. भाग० १०। अ० ३३—तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः । स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥२॥ इत आरभ्य २६ श्लोकपर्यन्तं रासक्रीडा द्रष्टव्या ।

६. ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः । पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्षिताः । भाग० १०।२२।१७ इत्यारभ्य विंशश्लोकपर्यन्तं द्रष्टव्यम् ।

अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः ।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम् ॥[1]

पापमिति शेषः ।

नाग्निं मुखेनोपधमेन्नग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् ।[2]

इत्याह भगवान् मनुः । अस्माद्विरोधाल्लोकविरोधाच्च प्रमत्तगीतमेतत् ।

आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् ।
किमभिप्राय एतन्नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥[3]

अत्राऽपि कृष्णस्य निन्दा कृता । सर्वज्ञः कृष्णः कदाचिज्जुगुप्सितं कर्म न कुर्यात् ।

सुभद्राहरणकथायां कृष्णार्जुनसुभद्राणां निन्दैव कृता—'कृष्णः कपटरूपिणमर्जुनं महात्मास्तीति कथितवान्[4] इति; अर्जुनः कपटरूपं कृतवान्[5] इति; सुभद्राऽपि निन्दितं कर्म कृतवती'[7] इति ।

किन्तु 'बिना दिए पदार्थों को ग्रहण करना, विधान के बिना हिंसा करना, पराई स्त्रियों का सेवन करना, तीन प्रकार का शारीरिक पाप कहा गया है।' और—'मुख से अग्नि को न फूंके, नङ्गी स्त्रियों को न देखे' ऐसा मनु ने कहा है। [मनुस्मृति के साथ] विरोध होने से तथा लोक से विरुद्ध होने से [उक्त कथायें] प्रमादी पुरुष की कही हुई हैं।

आप्तकामो यदुपतिः०—इस श्लोक में भी कृष्ण की निन्दा की है[8]। सर्वज्ञ[9] कृष्ण कभी निन्दित कर्म नहीं कर सकता।

सुभद्राहरण कथा में कृष्ण, अर्जुन और सुभद्रा की निन्दा की है

---

१. मनु० १२।७॥ २. मनु० ४।५३॥ ३. भाग० १०।२३।२६॥
४. द्र० भाग० १०।८६ अ० ॥
५. एकदा गृहमानीय आतिथ्येन निमन्त्र्य तम् । भाग १०।८६।५॥
६. तल्लिप्सुः स यतिर्भूत्वा त्रिदण्डी द्वारकामगात् । भाग १०।८६।३॥
७. सापि तं चकमे वीक्ष्य नारीणां हृदयंगमम् । हसन्ती व्रीडितापाङ्गी तन्न्यस्तहृदयेक्षणा ॥ भाग० १०।८६।७॥
८. इस श्लोक में कहा है—'सब कामनाओं से पूर्ण कृष्ण ने रासक्रीड़ा जैसे निन्दित कर्म क्यों किए............।' अर्थात् कृष्ण को निन्दित कर्म करने वाला बताया है।
९. पौराणिकों के मतानुसार कृष्ण को सर्वज्ञ मानकर यह पंक्ति लिखी है।

इन्द्रस्यापि गोवर्धनोद्धरणकथायां[1] निन्दा कृता–इन्द्रो लज्जितो बभूव'[2] इति।

अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणां महात्मनां निन्दैव कृता सप्ताहोत्थान-कथायाम्[3]—'तेषां मध्ये एकोऽपि परीक्षितं समाधातुं समर्थो नेति।[4]'

ब्रह्मणोऽपि वत्सहरणहंसावतरणकथायां[5] निन्दैव कृता—'अज्ञानी ब्रह्मा'[6] इति।

ततः पुष्करतः सृष्टस्सर्वज्ञो मूर्तिमान् प्रभुः।
ब्रह्मा वेदमयः साक्षात् प्रजापतिरनुत्तमः॥[7]

कि—'कृष्ण ने कपट रूपधारी अर्जुन को महात्मा बताया, अर्जुन ने कपट रूप धारण किया, और सुभद्रा ने भी निन्दित कर्म किया।'[8]

गोवर्धन-उद्धरण कथा में इन्द्र की भी निन्दा की है कि—'इन्द्र लज्जित हो गया।'

सप्ताहोत्थान कथा में अस्सी सहस्र ऋषि-महात्माओं की निन्दा की है कि—'उनमें से एक भी परीक्षित की शङ्का का समाधान करने में समर्थ नहीं हुआ'।

वत्सहरण और हंसावतरण कथा में ब्रह्मा की भी निन्दा की—'अज्ञानी

---

१. भाग० १०।२५॥

२. कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः। निस्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान् स न्यवारयत्॥ भाग० १०।२५।२४॥

३. द्र० भागवत महात्म्य ५।४१॥

४. अन्वेषणीयम्।

५. वत्सहरणकथा भाग० १०।१३,१४ अ०॥ हंसावतरणकथा—भाग० ११।१३।१६, तथाग्रे।

६. अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः। अजावलेपान्धतमसोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति॥ भाग० १०।१४।१०॥ एवमेव 'ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा पप्रच्छुः को भवानिति'। भाग० ११।१३।२०॥

७. अनुपलब्धमूलमिदम्।

८. भागवत में कहा है कि 'अर्जुन ने सुना कि बलराम सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहते हैं, तो अर्जुन भिक्षु का रूप बनाकर द्वारका पहुंचा, और वहां उसने आसन जमाया। कृष्ण ने पहचान कर उसे अतिथि(महात्मा) के रूप में भिक्षा के लिए आमन्त्रित किया। सुभद्रा उस भिक्षु के कान्त शरीर को देखकर उस पर आसक्त हो गई, इत्यादि।

इति महाभारतविरोधात् प्रमत्तगीतमेतत् ।

धर्मे चार्थे च कामे च मोक्षे च भरतर्षभ ।
यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न कुत्रचित् ॥[1]

महाभारताद् विरुद्धं यत्तन्न व्यासप्रोक्तमिति महाभारते । इदं तु भागवतं महाभारताद् विरुद्धमेवास्ति[2] तस्मात् प्रमत्तगीतमेव ।

"वन्दे महापुरुषचरणारविन्दम्"[3] [इति]

ब्रह्मा' ऐसा कहा । [किन्तु यह महाभारत के] 'पश्चात् कमलरूपा पृथिवी के निष्पादन के अनन्तर उत्पन्न किया सर्वज्ञ शरीरधारी प्रभु ब्रह्मा को, जो साक्षात् वेदमय और श्रेष्ठतम प्रजापति था' इस वचन से विरुद्ध होने से [भागवत का ब्रह्मा को अज्ञानी कहना] प्रमादी पुरुष का कथन है ।

'धर्म अर्थ काम और मोक्ष के विषय में हे भरतर्षभ ! जो यहां (= महाभारत में कहा गया) है, वही अन्यत्र (= अन्य ग्रन्थों में) है, जो यहां नहीं है, वह कहीं नहीं है' । [इस वचन के अनुसार] महाभारत से जो विरुद्ध है, वह व्यास जी का कहा नहीं है, ऐसा महाभारत में [कहा है] । वह भागवत महाभारत से विरुद्ध ही है[4] इसलिए प्रमत्तगीत है ।

'वन्दे महापुरुष०— 'प्रणाम करता हूं हे महापुरुष ! तुम्हारे चरणारविन्दों को' यह कथन भी—

---

१. महाभारत आदि० ६२।५३। चित्रशाला-पूना-संस्करणे 'न तत् क्वचित्' इति चतुर्थचरणे पाठः ।

२. महाभारते कृष्णस्य यच्चरितं व्यासेनोक्त तदत्यन्तं श्रेष्ठं वर्तते । तत्र कृष्णस्य किञ्चिदपि गर्हित कर्म न निर्दिष्टम् । द्र० महाभारते सभापर्वणि अष्टात्रिंशत्तमेऽध्याये भीष्मकृत कृष्णवर्णनम्, एकचत्वारिंशे चाध्याये शिशुपालकृत कृष्णदोषवर्णनम् ।

३. भाग० ११।५।३३,३४ उत्तरार्धं ।

४. महाभारत में कृष्ण का चरित अत्यन्त श्रेष्ठ कहा है । शिशुपाल जैसे विरोधी को भी कृष्ण के चरित में कहीं भी कोई वास्तविक दोष दिखाने को नहीं मिला । देखिए महाभारत सभापर्व अ० ३८ में भीष्म द्वारा कृष्णचरितवर्णन तथा अ० ४० में शिशुपाल द्वारा कृष्णदोषवर्णन ।

द्यां मूर्धानं यस्य विप्रा वदन्ति
खं वै नाभिं सोमसूर्यौ च नेत्रे ।
दिशः श्रोत्रे यस्य पादौ क्षितिश्च
ध्यातव्योऽसौ सर्वभूतान्तरात्मा ॥१॥[1]
यद्वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥२॥[2]
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥३॥[3]

इत्यादिभ्यः श्रुतिभ्यो विरुद्धं चरणारविन्दवन्दनादिकमेव । अतोऽकथनीयम् अश्रवणीयं चेदं प्रमत्तगीतं भागवतम् ।

पूर्वापरविरुद्धमप्यस्ति—

नृसिंहेन प्रह्लादाय वरो दत्तः—'एकविंशतिपित्र्यास्तव मोक्षं गच्छन्तु ।'[4] पुनरुक्तं प्रमत्तेन—'तावेव रावणकुम्भकर्णौ बभूवतुः[5], पुनस्तावेव

द्यां मूर्धानम्०—द्युलोक को जिसका शिर विप्र लोग कहते हैं, आकाश को नाभि, चन्द्र सूर्य को दोनों नेत्र, दिशाओं को श्रोत्र, और जिसके पैर पृथिवी [कहे जाते हैं], जो ध्यान करने योग्य है, वह सब भूतों का अन्तरात्मा है ।

यद्वाचा०—जो वाणी से कहा नहीं जा सकता, जिसकी शक्ति से वाणी बोलती है, उसी को ब्रह्म तू जान । नहीं है यह जिसको तू उपासना करता है ।

यन्मनसा०—जो मन से विचारा नहीं जा सकता, जिससे मनन शक्ति को प्राप्त कर मन विचारता है, उसी को ब्रह्म तू जान । नहीं है यह जिसकी तू उपासना करता है ।

इत्यादि श्रुतियों से विरुद्ध ही है, चरणारविन्द का वन्दन । इसलिए कहने और सुनने योग्य नहीं है, यह प्रमत्तगीत भागवत ।

पूर्वापर विरुद्ध भी है—

नृसिंह ने प्रह्लाद को वर दिया—'**तेरे २१ इक्कीस पितादि मोक्ष को**

१. वायुपुराण ६।१२०॥ २. केन उ० १।४॥ ३. केन उ० १।५॥
४. त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ । भाग० ७।१०।१८॥
५. पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः । कुम्भकर्णदशग्रीवौ···। भा० ७।१०।३६॥

शिशुपालदन्तवक्रौ बभूवतुः[1]" **इति च विरुद्धमेव।**

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।[2]

इति ब्रह्मणे वरो दत्तो नारायणेन। पुनरुक्तम्—'ब्रह्मा मोहितो भूत्वा वत्सहरणं कृतवान्[3]' इति विरुद्धमेव।

'कृष्णो नग्नां बाणासुरमातरं न दृष्टवान्[4]' **पुनरुक्तं प्रमत्तेन**—चीर-लीलां कृतवान्[5] **इति विरुद्धमेव।**

भस्मासुरकथायां शिवस्य निन्दां[6] कृत्वा पुनर्विषपानकथायां[7] 'भवानेव विष्ण्वादीनामीश्वरः'[8] **इति विरुद्धमेव।**

प्राप्त हों'। फिर कहा प्रमादी ने—**'वे [हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप] ही रावण और कुम्भकर्ण हुए, और पुनः वे ही शिशुपाल और दन्तवक्र हुए'** यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

भवान् कल्प०—'आप कल्प=सृष्टि और विकल्प=प्रलय में कभी मोह को प्राप्त नहीं होते'। ऐसा ब्रह्मा को वर दिया नारायण ने। पुनः कहा—**'ब्रह्मा ने मोहित होकर [गोपों की गौवों के] बछड़ों का हरण किया'** यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

'कृष्ण ने बाणासुर की नङ्गी माता को नहीं देखा'। पुनः कहा प्रमादी ने—**'चीरहरण लीला की'** (उसमें स्नान करती हुई स्त्रियों के वस्त्र उठा लिए और वस्त्र लेने के लिए उनको नङ्गी बाहर आने पर बाध्य किया)। यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

भस्मासुर की कथा में शिव की निन्दा करके पुनः विषपान कथा में—**'आप ही विष्णु आदि के ईश्वर हैं',** [ऐसा कहा]। यह कथन परस्पर विरुद्ध ही है।

---

१. ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ। भाग० ७।१७।३८॥ करूषजस्त्वेवापर नाम दन्तवक्र आसीत्। द्र० भाग० ९।२४—श्रुतदेवां तु करूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत्। यस्यामभूद् दन्तवक्रः ऋषिशप्तो दितेः सुतः। काशीसंस्करणे—'कारूषो', 'दन्त-वक्त्रः', 'ऋषिसप्तो' पाठा अशुद्धाः सन्ति। २. भाग० २।९।३६॥

३. द्र० भागवत १०।१४।१०; पूर्व पृष्ठ १२, टि० ५ निर्दिष्टौ श्लोकौ।

४. तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा। ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरी-क्षन् गदाग्रजः॥ भाग० १०।६३।२०,२१॥ ५. द्र० भाग० १०।२२।१७-२०॥

६. द्र० भाग० १०।८८ अ०॥ ७. भाग० ८।७।२०—४५॥

८. भाग० ८।७।२१—३७ श्लोकानां सारोऽयम्।

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः[1] इति श्रुतेः; नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते[2] इति स्मृतेश्च। एवं सति 'भक्तिरेव मोक्षदात्री'[3] इति वेदादिभ्यो विरुद्धमेव।

अतः कुग्रन्थस्य भागवताख्यस्यास्य कर्ता मूर्ख एव। अस्मात् कारणात् सुखेप्सुभिः कदाचिदिदं प्रमत्तगीतं न कथनीयं न श्रोतव्यं चेति सिद्धान्तः। ये तु लोभाच्छ्रावयन्ति मूर्खत्वाच्छृण्वन्ति ते वै नरके पतिष्यन्ति। ये प्रमत्तगीतमिदं भागवतं श्रावयन्ति शृण्वन्ति च, ते सर्वे पाषण्डिनः अतएव महापातकिनः सन्ति। यश्च कथितवान् वोपदेवः, सोऽपि पाषण्डी महापातकी चास्ति। अत एव प्रमत्तगीतस्यास्य भागवतस्याध्ययनमध्यापनं श्रवणं च नरकगमनमेव। किं बहुना लेखेन, एतावतैव वेदितव्यं युष्माभिः। एवमेव—

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरश्च[4]

'बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती' यह श्रुति का [वचन है]। और 'नहीं' ज्ञान के सदृश पवित्र इस संसार में है' यह स्मृति (=गीता) का [वचन है]। ऐसा होने पर 'भक्ति ही मोक्षदायिनी है' यह कथन वेदादि शास्त्रों से विरुद्ध ही है।

इसलिए भागवत नाम के इस कुग्रन्थ का कर्ता मूर्ख ही है। इस कारण सुख चाहने वालों को कभी इस प्रमत्तगीत भागवत की कथा और श्रवण नहीं करना चाहिये, यही सिद्धान्त है। जो लोग लोभ से सुनाते हैं, और जो मूर्ख होने से सुनते हैं, वे निश्चय ही नरक में पड़ेंगे। जो इस प्रमत्तगीत भागवत को सुनाते और सुनते हैं, वे सब पाखण्डी हैं, इसलिए वे महापातकी हैं। जिस वोपदेव ने इस भागवत को कहा (=रचा) वह भी पाखण्डी और महापातकी है। इसलिए प्रमत्तगीत इस भागवत का अध्ययन, अध्यापन, कथन, श्रवण करना नरक-गमन का कारण है। बहुत लिखने से क्या, इतने से ही आप लोगों को जान लेना चाहिये। इसी प्रकार 'जन्माद्यस्य०' आदि श्लोकों से बनाया गया यह भागवत सारा ही अशुद्ध है।

---

१. अनुपलब्धमूलम्। २. गीता ४।३८॥

३. द्र० भाग० माहात्म्य अ० ६, श्लोक ८३—भक्त्या विमुच्येश्वरः। भाग० ११।१८।१८—२५ द्रष्टव्य। ४. भाग० १।१।१॥

इत्यादिश्लोकैर्निमितमिदं भागवतं सर्वमशुद्धमिति ।

कथं तर्हि श्रीधरादिभिरशुद्धस्योपरि टीका कृता ? अज्ञानात् । कुत एतदज्ञानत्वं तेषु श्रीधरादिषु ? न ज्ञातमशुद्धं तैः अतोऽज्ञानत्वमेव ।

'सत्यं परं धीमहि'[1] इत्यत्र शिष्याभिप्रायं बहुवचनम्[2] इत्युक्तवान् प्रमत्तः श्रीधर इति । शिष्यास्तु युष्मदि वर्तन्ते,[3] कुतोऽभिप्रायस्तत्रायातः[4] ? एकोऽपि ब्रूयादेव 'अहं ब्रवीमि,' 'वयं ब्रूमो' वा । अस्मदो द्वयोश्च[5] इति व्याकरणसूत्रात् । अतोऽशुद्धमेतत् 'शिष्याभिप्रायं बहुवचनम्' इति ।

अन्यकृतमिति न शङ्कनीयम् इत्युक्तं श्रीधरेण । 'प्राप्तौ सत्यां निषेधः'[6] अतोऽन्यकृतमेव ।

नायं श्रीधरनामा । कस्तर्हि ? दरिद्राधरनामैवास्ति । कुतः ? मूर्ख-

---

तो श्रीधर ने इस अशुद्ध [भागवत] पर कैसे टीका लिखी ? अज्ञान से । उन श्रीधरादि में यह अज्ञान कैसे [जाना जाए ?] यह अशुद्ध है, ऐसा उन्होंने नहीं जाना, इससे अज्ञान ही है ।

'सत्यं परं धीमहि'—इसमें **'शिष्यों के अभिप्राय से बहुवचन है'** ऐसा प्रमादी श्रीधर ने कहा है । शिष्यों का निर्देश 'युष्मद्' से होता है, [इसलिए] उनका अभिप्राय कहां से आया ? [अर्थात् उनके अभिप्राय से 'धीमहि' में बहुवचन कैसे हो सकता है ?] एक व्यक्ति भी कह सकता है—'मैं कहता हूं' अथवा 'हम कहते हैं' **अस्मदो द्वयोश्च** (=अस्मद् शब्द से दो और एक में बहुवचन का प्रयोग होता है), इस व्याकरण-सूत्र के नियम से । इसलिए 'शिष्यों के अभिप्राय से बहुवचन है' कहना अशुद्ध ही है ।

'यह भागवत अन्यकृत है (व्यासकृत नहीं है), ऐसी शङ्का नहीं करनी चाहिए' ऐसा श्रीधर ने लिखा है । **'प्राप्ति होने पर ही निषेध किया जाता है'** इस न्याय से अन्यकृत ही [भागवत है, ऐसा जानना चाहिए] ।

यह [भागवत का टीकाकार] **श्रीधर** (=लक्ष्मी=विद्या का धारण

---

१. भाग० १।१।१॥ २. भाग० १।१।१ टीकायाम् ।

३. शिष्यान् प्रति भागवतस्य प्रवचनात्—'हे शिष्याः·········वयं सत्यं परं धीमहि, तद्यूयं शृणुत' इत्यभिप्रायात् ।

४. धीमहि' क्रियांशे शिष्याणामन्वयाभावात् । ५. अष्टा० १।२।५९॥

६. लौकिकोऽयं न्यायः ।

त्वात्। किं बहुना लेखेन। श्रीधरादीनां ज्ञानमेव नास्ति वेदादिषु इति स्थालीपुलाकन्यायवल्लेखनं कृतमस्माभिः। तद् युष्माभिर्वेदितव्यम्— सर्वं भागवतमशुद्धमिति।[1]

ब्राह्मणक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णाः, ब्रह्मचारिगृहिवनिसंन्यासिन आश्रमाश्च ज्ञातव्याः। एषां वेदेषु मनुस्मृतौ च धर्मा उक्ताः। एभ्यो ये विरोधिनस्ते पाषण्डिन एव। किंलक्षणास्ते ? चक्राद्यङ्कनकेवलोर्ध्वपुण्ड्रकाष्ठमाला-धारिणः। तप्तमुद्रोर्ध्वपुण्ड्रे द्वे नरकवाससाधने। तस्मात् त्याज्यमनर्घद्वि-जैर्नरकभीरुभिरिति जाबालिः—

विभूतिधारणं त्यक्त्वा त्यक्त्वा रुद्राक्षधारणम्।
मां मा पूजय विश्वेशं शिवलिङ्गरूपिणम्।[2]

इत्याह विष्णुपुराणे।

'यज्ञो वै विष्णुः'[3] इति श्रुतेर्यज्ञकर्ता वैष्णवो नान्यः।

करने वाला) नाम वाला भी नहीं है, अपितु दरिद्राधर (=दारिद्र्य= मौर्ख्य का धारण करने वाला) नाम वाला ही है। क्यों ? मूर्ख होने से। बहुत लिखने से क्या ? श्रीधरादि को वेदादि के विषय में ज्ञान ही नहीं है, यह हमने स्थाली-पुलाक न्याय से लिखा है। इसलिए आप लोगों को जानना चाहिए कि सारा भागवत ही अशुद्ध है।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण, तथा ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ और संन्यासी ये चार आश्रम जानने चाहियें। इनके धर्म वेदों तथा मनुस्मृति में कहे हैं। उनके जो विपरीत हैं वे पाखण्डी ही हैं। उनके क्या लक्षण हैं ? चक्र आदि से शरीर के दागने, ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक और काठ (तुलसी आदि) की माला धारण करने वाले। गरम चक्र आदि से मुद्रा करना(दागना)और ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक लगाना नरक-गमन के साधन हैं। इसलिए ये त्याज्य हैं नरक से डरने वाले श्रेष्ठजनों द्वारा। ऐसा जाबालि ने—'विभूति का धारण छोड़कर तथा रुद्राक्ष का धारण छोड़कर मुझ शिवलिङ्ग रूपी विश्वेश की पूजा मत कर' ऐसा विष्णुपुराण में कहा है।

'यज्ञ ही विष्णु है' ऐसा श्रुति का कथन होने से यज्ञ करने वाला ही वैष्णव (=विष्णुभक्त) है, अन्य नहीं।

---

१. भागवतं तट्टीका चेत्यभिप्रायः। २. अनुपलब्धमूलमिदम्।
३. शत० १३।१।८।८॥ कौ० ब्रा० ४।२; १८।८, १४ इत्येवं बहुत्र।

बृहन्नारदीये पुराणे धर्मभगीरथसंवादे भगीरथं प्रति धर्मराजवाक्यम्—

यस्तु संतप्तशङ्खादिलिङ्गाङ्कितनुर्नरः ।
स सर्वयातनाभागी चाण्डालः कोटिजन्मसु ॥[1]

एतल्लक्षणाः पाषण्डिनः ये तु पाषण्डिमतविश्वासिनस्तेऽपि पाषण्डिनः ।

पाषण्डिनो विकर्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान् बकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्चयेत् ॥[2]

इत्याह मनुः । अत एव वाङ्मात्रेणापि पाषण्डिभिस्सह व्यवहारो न कर्तव्यः ।

पाषाणादिमूर्तिपूजनं पाषण्डिमतमेव । कुत एतत् ? वेदादिभ्यो विरोधात्—

यद् वाचाऽनभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ॥ [१][3]
यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् । तदेव० ॥२॥[3]

बृहन्नारदीय पुराण में धर्म-भगीरथ के संवाद में भगीरथ के प्रति धर्मराज का वाक्य है—**जो अत्यन्त तपाए हुए शंख आदि से अङ्कित शरीर वाला मनुष्य है, वह सर्व दुःखों का भागी करोड़ों जन्म तक चाण्डाल होता है।** इसलिए इस प्रकार के चिह्नों वाले पाखण्डी हैं। और जो पाखण्डियों के मत के विश्वासी हैं, वे भी पाखण्डी हैं।

'पाखण्डियों' बुरे कर्म करने वालों, बैडालव्रतवालों, शठों, कुतर्कियों और बगुलाभक्तों का वाणीमात्र से भी सत्कार न करे' ऐसा मनु ने कहा है। इसलिए वाणीमात्र से भी पाखण्डियों के साथ व्यवहार नहीं रखना चाहिए।

पाषाणादि मूर्तियों का पूजन पाखण्डी मत ही है। क्यों ? वेदादि से विरुद्ध होने से—

'जो वाणी से नहीं कहा जाता, जिससे वाणी बोलने में समर्थ होती है, उसे ही ब्रह्म तू जान। नहीं है यह जिसकी उपासना करता है'।

'जो मन से नहीं विचारा जाता, जिससे मन विचारने में समर्थ होता

---

१. अनुपलब्धमूलमिदम्। २. मनु० ४।३०॥ ३. केन उ० १।४५॥

यत्प्राणेन न प्राणते येन प्राणः प्रणीयते । तदेव० ॥३॥[1]

इत्यादिश्रुतिभ्यः । अत एव पाषाणादिकृत्रिम[2] मूर्तिपूजनं वृथैव ।

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।[3]

इति भगवद्गीतावचनात् ।

किं बहुना लेखेन, एतावतैव सज्जनैर्वेदितव्यम् विदित्वाऽऽचरणीयमेव ।

दयानन्दसरस्वत्याख्येन स्वामिना निर्मितमिदं पत्रं वेदितव्यं विद्वद्भिरिति । शुभं भवतु वक्तृभ्यश्श्रोतृभ्यश्च ।

वेदोपवेदवेदाङ्गमनुस्मृतिमहाभारतहरिवंशपुराणानां वाल्मीकिनिर्मितस्य रामायणस्य चाध्यापनमध्ययनं कर्तव्यं कारयितव्यं च । एतेषामेव श्रवणं कर्तव्यमिति ।

है, उसे हो०'

'जो प्राणवायु से जीवित नहीं होता, जिससे प्राण गति करता है, उसे ही० ।

इत्यादि श्रुतियों से [विरुद्ध है]। इसलिए पाषाण आदि की कृत्रिम मूर्तियों की पूजा व्यर्थ है ।

'मूर्ख लोग अव्यक्त (—अप्रकट रहने वाले) मुझको व्यक्त (प्रकट—हुआ—शरीर-धारण किया हुआ) मानते हैं' इस भगवद्गीता के वचन [के विरोध] से भी ।

बहुत लिखने से क्या ? इतने से ही सज्जनों को जान लेना चाहिए और जानकर [उनके अनुसार] आचरण करना चाहिए ।

दयानन्द सरस्वती नाम के स्वामी ने यह [विज्ञापन] पत्र बनाया है, ऐसा विद्वानों को जानना चाहिए । कल्याण हो वक्ताओं और श्रोताओं के लिए ।

वेद उपवेद वेदाङ्ग मनुस्मृति महाभारत हरिवंश पुराण आदि और वाल्मीकि-निर्मित रामायण का पठन-पाठन करना कराना चाहिए, और इन्हीं का श्रवण करना चाहिये ।

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मितस्य भागवतखण्डनस्य युधिष्ठिरमीमांसकविहित आर्यभाषानुवादः समाप्तः ॥

---

१. केन० उ० १।१॥

२. 'कत्रिम' इति पूर्वमुद्रितोऽपपाठः ।

३. गीता ७।२४॥

परिशिष्ट

'भागवत-खण्डन' और 'सत्यार्थ-प्रकाश' की तुलना

ऋषि दयानन्द ने 'भागवत-खण्डन' पुस्तक लिखने के लगभग ८ वर्ष पश्चात् 'सत्यार्थ-प्रकाश' नामक ग्रन्थ लिखा। यह सं० १९३२ (सन् १८७५) में प्रकाशित हुआ। इसके लगभग ७-८ वर्ष पश्चात् सं० १९३९ में 'सत्यार्थ-प्रकाश' का संशोधित संस्करण तैयार किया, जो सं० १९४० में प्रकाशित हुआ। ग्रन्थकार द्वारा स्वयं संशोधित होने के कारण यद्यपि द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है, तथापि तुलना के लिए हम यहां दोनों के पाठ उद्धृत करते हैं। 'सत्यार्थ-प्रकाश' के दोनों संस्करणों में 'भागवत' पुराण के खण्डन में जो कुछ लिखा है, उसके कई अंश प्रस्तुत 'भागवत-खण्डन' पुस्तक के साथ प्रायः मिलते हैं : यथा—

१. **भागवत-खण्डन**[1]—शुक तो भारतयुद्ध से पूर्व ही मोक्ष को प्राप्त हो गया था, ऐसा महाभारत के शान्तिपर्व में लिखा है। इसलिए अशुद्ध ही है कि—शुक ने परीक्षित के लिए भागवत कहा[2]। (पृष्ठ ३)।

सत्यार्थ-प्रकाश प्र० सं०—शुक्राचार्य व्यास जी का पुत्र परिक्षित के जन्म से १०० वर्ष पहले ही मर गया था, परीक्षित का जन्म पीछे भया। सो महाभारत के मोक्षधर्म में लिखा है। फिर जो मनुष्य कहते हैं कि शुकाचार्य ने सप्ताह सुनाया, सो केवल मिथ्या है। क्योंकि उस समय शुकाचार्य का शरीर नहीं था। (पृष्ठ ३६५)

भागवत-खण्डन—"**ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्**"—जो परम गुह्य ज्ञान होता है, वह विज्ञान ही होता है। अतः पुनः 'विज्ञान-

---

१. यद्यपि 'भागवत-खण्डन' मूल रूप से संस्कृत में है, तथापि तुलना के लिए हम उसका आर्यभाषानुवाद ही दे रहे है।

२. महाभारत शान्तिपर्व के अन्तर्गत मोक्ष-धर्म प्रकरण (अ० ३३३) में भीष्म ने शुकदेव की मोक्ष-प्राप्ति की कथा कही है। शान्तिपर्व की समस्त कथाएं भारतयुद्ध के पश्चात् भीष्म ने महाराज युधिष्ठिर के प्रति कही हैं।

समन्वितम्' (=विज्ञान से युक्त कहना) व्यर्थ है। इसी प्रकार चतुःश्लोकी[1] अशुद्ध है। (पृष्ठ ४)

सत्यार्थ-प्रकाश प्र० सं०—चतुःश्लोकी[1] सब भागवत का मूल मानते हैं—

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥

इत्यादिक चार श्लोक बना लिए हैं। क्योंकि परम और गुह्य ये दोनों ज्ञान के विशेषण होने से वही विज्ञान हो जाता है, फिर **'यद्विज्ञानसमन्वितम्'** यह जो उसका कहना, सो मिथ्या हो जाता है। क्योंकि रहस्य नाम एकान्त और गुह्य का ही है। **परमज्ञान** के कहने से तदङ्ग अर्थात् मुक्ति का अङ्ग है; यह उसका कहना मिथ्या ही है। क्योंकि परमज्ञान जो होता है, सो मुक्ति का अङ्ग ही होता है। जैसा यह श्लोक मिथ्या है, वैसा सब भागवत भी मिथ्या है……। (पृष्ठ ३६५)

सत्यार्थ-प्रकाश द्वि० सं०—अब जिसको 'श्रीमद्भागवत' कहते हैं, उस की लीला सुनो। ब्रह्मा जी को नारायण ने चतुःश्लोकी[1] भागवत का उपदेश किया—

ज्ञानं परमं गुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥

भा० स्क० २, अ० ६, श्लो० ३०॥

हे ब्रह्मा जी! तू मेरा परम गुह्य ज्ञान, जो विज्ञान और रहस्य युक्त, और धर्म अर्थ काम मोक्ष का अङ्ग है, उसी का मुझसे ग्रहण कर।

जब विज्ञानयुक्त कहा तो अर्थात् [श्रेष्ठ] ज्ञान का विशेषण रखना व्यर्थ है, और गुह्य विशेषण भी पुनरुक्त है। जब मूल श्लोक अनर्थक है, तो ग्रन्थ अनर्थक क्यों नहीं? (पृष्ठ ३३२)

३. **भागवत-खण्डन**—**'निगमकल्पतरोः'** इस श्लोक में वेद की निन्दा की है। (पृष्ठ ६)

सत्यार्थ-प्रकाश प्र० सं—फिर भी **निगमकल्पतरोर्गलितं फलम्** इत्यादिक श्लोकों से केवल वेदों की निन्दा ही की है…। (पृष्ठ ३६८)

४. **भागवत-खण्डन**—व्यास और नारद के संवाद में व्यास की भी

---

१. भाग० २।६।३१-३४ तक मूल भागवत चतुःश्लोकी। आगे उद्ध्रियमाण श्लोक चतुःश्लोकी की भूमिकारूप है।

निन्दा की है कि—'व्यास जी शोकातुर हो गये थे। वहां नारदमुनि पहुंचे और उन्होंने व्यासजी का शोक दूर किया'। व्यासजी नारायण के अवतार कहे गये हैं¹, तब उन्हें शोक कैसे हो सकता है? (पृष्ठ ८-९)

सत्यार्थ-प्रकाश प्र०सं०—व्यासजी ने वेद-वेदाङ्ग विद्याओं को पढ़ लिया ···फिर भी सरस्वती नदी के तट में एक वृक्ष के नीचे शोकातुर होके जैसे रोते होते वैसे बैठे थे। उस समय में वहां नारद आए···। नारदजी बोले— तुमने भागवत कथा नहीं किई, और ऐसा ग्रन्थ भी कोई नहीं बनाया जिस में भागवत कथा हो, सो आप भागवत बनावें कृष्णजी के गुणयुक्त, तब आपका चित्त शान्त होगा। इसमें विचार करना चाहिये कि व्यासजी जो नारायण के अवतार होते तो उनको अज्ञान शोक और मोह क्यों होता? और उनको अज्ञानादिक थे। तो अज्ञानी का बनाया जो भागवत, उसका प्रमाण नहीं हो सकता। फिर इस कथा में वेदादिकों की केवल निन्दा आती है, क्योंकि वेदादिकों को पढ़ने से व्यासजी को ज्ञान नहीं भया, तो हम लोगों को कैसे होगा? (पृष्ठ ३६७-३६८)

५. भागवत-खण्डन— कृष्ण की भी रासमण्डल और चीरहरण लीला में निन्दा की है–पराई स्त्रियों के साथ लीला और नङ्गी स्त्रियों को देखा। (पृष्ठ १०)।

सत्यार्थप्रकाश प्र०सं०—श्रीकृष्ण विद्वान् धर्मात्मा और जितेन्द्रिय थे, ऐसा महाभारत की कथा से यथावत् निश्चित होता है। इससे श्रीकृष्ण की जैसी निन्दा इसने कराई, ऐसी किसी की न होगी। क्योंकि उसने रास-मण्डल की कथा लिखी। उसमें ऐसी ऐसी बात लिखी जिस्से यथावत् श्री-कृष्ण की निन्दा होय²···। इनमें विचारना चाहिये कि श्रीकृष्ण धर्मात्मा थे, ऐसा काम कभी नहीं करेंगे। और श्रीकृष्ण ऐसा कर्त्ते, तो कुम्भीपाक से कभी न निकलते। इस्से श्रीकृष्ण ने कभी ऐसा काम नहीं किया। क्योंकि वे बड़े धर्मात्मा थे। (पृष्ठ ३७०-३७१)

सत्यार्थ प्रकाश द्वि०सं०—देखो श्रीकृष्णजी का इतिहास महाभारत में अत्युत्तम है। उनका गुण कर्म स्वभाव और चरित्र आप्त पुरुषों के सदृश

---

१. द्र० भाग० १।३।२० में व्यास को नारायण का १७वां अवतार कहा है।

२. आगे भागवत में वर्णित रासलीला का संक्षेप से वर्णन किया है।

है। जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्रीकृष्णजी ने जन्म से मरण-पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा[1]। और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं। दूध दही मक्खन की चोरी लगाई। कुब्जा दासी से समागम, परस्त्रियों से रासमण्डल में क्रीड़ा आदि मिथ्या दोष श्रीकृष्ण जी में लगाये। (पृष्ठ ३३६)

६. **भागवत-खण्डन**—नृसिंह ने प्रह्लाद को वर दिया—तेरे २१ इक्कीस पितादि मोक्ष को प्राप्त हों। फिर कहा प्रमादी ने—वे [हिरण्याक्ष-हिरण्यकश्यप] ही रावण और कुम्भकर्ण हुए, और पुनः वे ही शिशुपाल और दन्तवक्र हुए। वह परस्पर विरुद्ध ही है। (पृष्ठ १४-१५)

सत्यार्थप्रकाश प्र० सं०—प्रह्लाद ने कहा कि मेरे पिता को मोक्ष होय। तब नृसिंह बोले कि मेरे वर से २१ पुरुषों का मोक्ष हो गया तेरे पितादिकों का···। फिर उसने लिखा कि हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यप ही रावण कुम्भकर्ण, शिशुपाल और दन्तवक्र होते भये। फिर सद्गति किनकी भई? यह बड़ी मिथ्या बात है। (पृष्ठ ३६७)

सत्यार्थप्रकाश द्वि० सं०—नृसिंह ने [प्रह्लाद को] वर दिया तेरे इक्कीस पुरुष सद्गति को गये।···और फिर वे ही हिरण्याक्ष हिरण्यकश्यप ही रावण कुम्भकर्ण, पुनः शिशुपाल दन्तवक्र उत्पन्न हुए, तो नृसिंह का वर कहां उड़ गया? ऐसी प्रमाद की बातें प्रमादी करते सुनते और मानते हैं, विद्वान् नहीं। (पृष्ठ ३३३-३३४)

७. **भागवतखण्डन**—**भवान् कल्प०**—'आप कल्प=सृष्टि और विकल्प =प्रलय में कभी मोह को प्राप्त नहीं होते, ऐसा ब्रह्मा को वर दिया

---

१. महाभारत में श्रीकृष्ण का चरित्र विभिन्न स्थानों पर बिखरा हुआ है। पुनरपि ऋषि दयानन्द के उक्त कथन की सत्यता जांचने के लिए हम सभापर्व के शिशुपालवध प्रकरण में अ० ३८ के श्लोक ६-२२ तक भीष्म द्वारा वर्णित कृष्ण-चरित्र तथा अ० ४१ में शिशुपाल द्वारा कथित कृष्णदोष वर्णन की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करते हैं। यदि कृष्ण ने अपने जीवन में कुछ भी बुरा कार्य किया होता (जैसे कि भागवत में बताए हैं), तो शिशुपाल उन्हें गिनाने से कभी न चूकता। परन्तु वह कृष्ण के किसी दुराचरण का निर्देश न कर सका इससे स्पष्ट है कि श्री कृष्ण का चरित्र स्फटिक के समान निर्मल था।

नारायण ने। पुनः कहा—'ब्रह्मा ने मोहित होकर बछड़ों का हरण किया है'। यह विरुद्ध ही है। (पृष्ठ १५)

सत्यार्थ-प्रकाश प्र० सं०—ब्रह्माजी को नारायण जी ने वर दिया कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्।

जब तक सृष्टि है उसका नाम कल्प और जब तक प्रलय बना रहे उस का नाम विकल्प। तो नारायण जी ने ब्रह्माजी से कहा कि तुमको कभी मोह न होगा। फिर वत्सहरण कथा में लिखा कि ब्रह्मा मोहित हो गये बछड़े को हर लिया। और उनी ब्रह्मा ने तो कहा था कि आप वसुदेव और देवकी के घर में जन्म लीजिए। फिर कैसी गाढ़ी भांग पी लिए कि झट भूल गए कि गोप है वा विष्णु का अवतार है। और भागवत बनाने वाले ने ऐसा नशा किया कि बड़ा अन्धकार इसके हृदय में है कि ऐसा बड़ा पूर्वापर विरुद्ध लिखता है। (पृष्ठ ३६९-३७०)

सत्यार्थ-प्रकाश द्वि० सं०—ब्रह्माजी को वर दिया था कि—

भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्। भाग० स्कं० २। अ० ९। श्लोक ३६॥

आप कल्प=सृष्टि और विकल्प—प्रलय में भी मोह को कभी न प्राप्त होंगे। ऐसा लिखकर पुनः दशम स्कन्ध में 'मोहित होके वत्सहरण किया'। इन दोनों में से एक बात सच्ची और दूसरी झूठी होकर दोनों झूठी। (पृष्ठ ३३२)

८. भागवतखण्डन—यह हमने स्थालीपुलाक न्याय से लिखा है। इस लिए आप लोगों को जानना चाहिये कि सारा भागवत ही अशुद्ध है। (पृष्ठ १८)

सत्यार्थ-प्रकाश प्र० सं०—ऐसी ऐसी बातें लोगों ने मिथ्या बना लई हैं।और भागवत के विषय में हमने थोड़े से दोष देखायें हैं, परन्तु भागवत सब दोष रूप ही है। (पृष्ठ ३७२)

